International Journal of Information Movement Vol.I Issue VII (November 2016)
Website: ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 50-56

समकालीन हिन्दी कविता पर सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव और मानव मूल्य

डॉ. शालू
पीएच.डी. (हिन्दी),
सैक्टर–3, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

सार :

प्रस्तुत शोध पत्र में समकालीन हिन्दी कविता पर सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव और मानव मूल्यों का अध्ययन किया गया है। समकालीन शब्द लगाते ही उससे अपने समय की सच्चाइयों और सामाजिक परिवर्तन की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। सच तो यह है कि हिन्दी कविता में समकालीन हिन्दी कविता का यह दौर समय की विसंगतियों और असंतोष को अभिव्यक्ति देने के लिए जाना जाता है। यही इसका सौन्दर्य, शक्ति और सीमाएं हैं। कविताओं में सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में पाश्चात्य जीवन शैली और विचारों के परिवर्तन को कवियों ने सशक्त अभिव्यक्ति दी है। समय के साथ–साथ समकालीन कविता के मुहावरे और कथ्य में भी अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई देता है। मनुष्य की बेचैनी और उसकी द्वंद्वात्मक मानसिकता को सूक्ष्मता के साथ जस का तस रख देने की विशेष दृष्टि इन कविताओं की ताकत है।

विशेष शब्द : प्रपंच, वितृष्णा, अर्राकर, स्वहित, बेपैंदा, पुर्नस्थापना

''समाज रीतियों एवं कार्यप्रणालियों की, अधिकार एवं पारस्परिक सहायता की, अनेक समूहों तथा विभागों की, मानव व्यवहार के नियंत्रणों तथा स्वतंत्रताओं की एक व्यवस्था है। इस सदैव परिवर्तनशील, जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं। यह सामाजिक संबंधों का जाल है और यह हमेशा परिवर्तित होता रहता है।''[1] क्योंकि मानव आरंभ से ही विकासशील है। विभिन्न प्रकार के अविष्कार ,राजनीतिक हलचल, सांस्कृतिक आर्थिक और धार्मिक बदलाव निरंतर समाज को परिवर्तित करते रहते है।

समाज व साहित्य का घनिष्ठ संबंध होता है, दूसरे शब्दों में साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं। चूंकि साहित्यकार मानव जीवन से ही तथा आसपास होने वाले परिवर्तनों से ही अपनी सामग्री ग्रहण करता है। अतः वह अपने आसपास होने वाले समस्त परिवर्तनों को अनुभूतियों को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है समाज में होने वाले समस्त परिवर्तनों से रूबरू होने के कारण साहित्यकार समाज की समस्त घटनाओं को न केवल साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है बल्कि प्रेरणा भी देता है। इस संबंध में प्रखर उपन्यासकार एवं साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान जैनेन्द्र कुमार साहित्य को प्रेरक शक्ति की संज्ञा देते हुये कहते है कि साहित्य अब प्रेरक भी है वह झलकाता ही नहीं अब वह चलाता भी है, हमारी

बीती ही उसमे नहीं होती, बल्कि हमारे मनोरथ और संकल्प भी उसमें भरे रहते है। साहित्यकार सामाजिक दृष्टिकोण से जन जागृति के लिये क्रियाशीलता और परिवर्तन के लिये साहित्य रचना में प्रवृत्त होता है। वह समाज की बनती बिगड़ती स्थितियों और प्रक्रियाओं का साक्षी बनकर उसे साहित्य में अवतरित करता है।

''समकालीन कविता अपने समय के मुख्य अंतर्विरोधों और द्वंदों की कविता है। समकालीन कविता में ''जो हो रहा है'' बिकमिंग का सीधा खुलासा है।''[2] यही कारण है कि समकालीन कविता समाज के समस्त परिवर्तनों को रेखांकित करती है।

हमारे सामायिक परिवेश में घटनाओं का तीव्र घटाटोप छाया हुआ है हर दिशा में बड़ी तेजी से परिवर्तन हुये है। नव वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रयोगों तथा उपलब्धियों के फलस्वरूप बढ़ती आधुनिकता तथा पाश्चात्य संस्कृति के आकर्षण, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के तनाव, भ्रष्टाचार और बढ़ती स्वार्थपरता ने व्यक्ति और व्यक्ति के बीच का संबंध समाप्त कर दिया है मानवीय भावनाओं का समाज में कोई स्थान नहीं रह गया है मानव को मानव बनाने वाले सत्य, प्रेम, सहानुभूति, करूणा, दया, ईमानदारी, परोपकार, सहयोग जैसे उदात्त मूल्य जो व्यक्ति और समाज की युग–युगांतर से सिंचित महत्वपूर्ण धरोहर रहे हैं, जो मानवीयता के नाते पीढ़ी दर पीढ़ी मनुद्दय अपने उत्तराधिकारियों को सौंपता आ रहा है, वह मूल्य भी समाज की इन परिवर्तित स्थितियों में मानव जीवन से अपनी सत्ता खो बैठे हैं। मानवीय मूल्यों के संक्रमण के इस दौर में नैतिक एवं सामाजिक दायित्वों को छोड़कर व्यक्ति केवल स्वार्थ चिंतन में लिप्त हो गया है और ऐनकेन प्रकारेण सफलता अर्जित करना ही उसका ध्येय हो गया है।

समकालीन कविता समकालीन समाज के परिवर्तित जीवन प्रसंगों और मानव मूल्यों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण को पूरी ईमानदारी से अभिव्यक्त करती है। आज समाज में हर तरफ झूठ, छल प्रपंच का बोलबाला है सच जैसे मूल्य की महत्ता घटती जा रही है, यह ऐसा समय है कि लोग पाप करने के बाद सच को सीना तानकर स्वीकार करते हैं, क्योंकि वह जानते हैं कि उनका सच सिद्ध नहीं हो पायेगा और वह पाप करके भी बच जाएंगें। यहा तक की सत्य उपदेश भी अपना महत्व खो बैठे हैं, ऐसे पवित्र कर्म जो कभी आत्मा से किये जाते थे वह अब छल से चतुराई से बड़ी आसानी से किये जाते हैं। समकालीन कवि रघुवीर सहाय की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति दृष्टव्य है –

''जो कहूँगा सच कहूँगा और सच के सिवाय कुछ नही
कहूँगा/यह युग ही ऐसा है कि मुझे सच से कोई डर नहीं/सच बोलना पाप करने के बाद की नीति है/जमाना बदल गया उपदेश बेकार हो गये/अब वही काम जा आत्मा से होते थे/सहज चतुराई से होते हैं।''[3]

सम्पूर्ण समाज से सत्य जैसे मूल्य से लोगों की आस्था उठती जा रही है यू तो सच से सब दूर होते जा रहे हैं, लेकिन जो सच बोलते हैं आज भी इस

मूल्य में आस्था रखते हैं वह विभिन्न यातनाओं का शिकार होते हैं। बेईमान और स्वार्थी लोग सच कहने वालों को ही कष्ट देते हैं यहा तक की समाज स्वयं ऐसे लोगों से डरता है कि कहीं उसके सत्य का शिकार वह न हो जायें। यही कारण है कि समाज विरोधी ताकतें जब भी कभी कोई सच बोलने का साहस करता हैं, तो उसे समाज से ही बेदखल करने के लिये एकजुट हो जातीहैं। कवि सत्य की इस दुर्दशा पर आक्रोशित होकर कहता है–

''तब सारे स्वार्थ जुट जाते हैं/सच कहने वाला को/अपने समाज से बाहर कर देने के लिये।''[4]

समकालीन कवि अनुभव करता है कि समाज में मानवीय रिश्तों का आधार प्रेम जैसा मूल्य जो मानव जीवन को मधुरता प्रदान करता है और जिसकी उदात्ता को भारतीय संस्त्रति में स्वीकार किया गया है। आज वह मूल्य केवल प्रदर्शन की वस्तु बनकर रह गया है लोग अपने स्वार्थ के लिये सहानुभूति एवं प्रेम का नाटक रचकर किसी की हत्या करने में भी नहीं हिचकते समकालीन कविता की यर्थाथाभिव्यक्ति दृष्टव्य है –

''सहानुभूति और प्यार। अब ऐसा छलावा है जिसक जरिये/एक आदमी दूसरे को अकेले। अंधेरे में ले जाता है और/उसकी पीठ में छुरा घोंप देता है।''[5]

वैज्ञानिक सभ्यता के बढ़ते तनावों ने मनुष्य के भीतर प्रेम के स्थान पर वितृष्णा और भर दी है मानव को संवेदना रहित बना दिया है। अपने स्वार्थो में उलझा मानव न तो किसी की पीड़ा से आहत होता है और ना ही किसी के लिये हमदर्दी और सहयोग की भावना रखता है, धूमिल की यह पंक्तिया समाज में मूल्यों की हिंसात्मकता को व्यक्त करती है–

''अब ऐसा वक्त आ गया है जब कोई/किसी का झुलसा हुआ चेहरा नहीं देखता है/अब न तो कोई किसी का खाली पेट देखता है/न थरथराती हुई टागें/और न ढ़ला हुआ सूर्यहीन कंधा देखता है/सबने भाईचारा भुला दिया है/आत्मा की सरलता को मारकर/मतलब के अंधेरे में/सुला दिया है।''[8]

इंसानी चरित्र में इतनी तेजी से परिवर्तन आये हैं कि अब सहानुभूति सहयोग जैसे मूल्य मृतप्राय हो गये हैं, जबकि हमारा समाज चलता ही एक दूसरे के सहयोग और सहानुभूति से था पड़ोस के सहयोग से ही बड़े–बड़े काम होते थे बच्चे के जन्म से लेकर विवाह, मृत्यु, घरेलु कामकाज सारे सुख दुःख आपस में मिल बाटकर जीते थे, लेकिन अब जबकि पारिवारिक संबंधों में ही सहयोग की भावना समाप्त हो गई है। अपनों के प्रति ही सहानुभूति नष्ट हो गयी

है तो पड़ोसी–पड़ोसी के संबंध मधुर कैसे रह सकते हैं :

''अर्राकर गिरती हैं पड़ोस की दीवारें और मित्रताऐं/टूटते हैं दरवाजे और बूढ़े सञिय लोग/पड़ोस एक सड़ांध देता धुआ है।''[7]

अब पड़ोसियों के प्रति व्यक्ति के मन में प्रतिस्पर्धा का भाव घर कर चुका है और धीरे – धीरे यह प्रतिस्पर्धा ईर्ष्या भावना से ग्रस्त होने लगी है और अब व्यक्ति पड़ोसी की कुशल क्षेम की प्रार्थना के स्थान पर सोचता है कि उसकी सारी

समृद्धि और विकास रुक जाए, वह बीमार पड़ जाए, उसके अशुभ की ढेरों कल्पनाएं व्यक्ति के मन में मंडराती रहती है –

''इस वक्त यह सोचना कितना सुखद है/कि मेरे पड़ोसियों के सारे दात टूट गये है उनकी जाघों की हरकर! पाला लगी मटर की तरह/मुर्झा गयी है उनकी आखों की सेहत/दीवार खा गयी है।''[8]

समकालीन कविता मोहभंग से उपजी मूल्यहीनता की कविता है। इसमे मानवीय मूल्यों के विघटन का व्यापक स्तर पर अंकन हुआ है कवियों ने यर्थाथवादी दृष्टिकोण अपनाकर समाज की विसंगतियों का चित्रांकन अपने काव्य में किया है। समकालीन समाज में लालच और लालसा की बढ़ती प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, जिसने ईमानदारी जैसे मूल्य पर भी प्रश्नचिन्ह लगा कर सर्वत्र पक्षपात और अन्याय का साम्राज्य विस्तारित कर दिया है। ईमानदारी का ढोंग करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना आज के व्यक्ति का बुनियादी चरित्र बनताजा रहा है। और क्यू न बने? जब समाज में आत्मीयता, सौहार्द्र और सहानुभूति ही न बची हो, तब ईमानदारी कहां से आ सकती है। समाज में उच्च जीवन यापन की लालसा से वशीभूत होकर लोगों में बेईमानी से रूपये खाने की लत पड़ गई है और लोग मानव सेवा के नाम पर भी करोड़ों रूपये खा रहे हैं और यह लत यह आदत समय के साथ चल रही है यथा –

''गरीबी की मार खाने से बचने के लिये/रूपये खाने की लोकतांत्रिक लत भी/सेवा का मेवा पाने की करोड़पति आदत भी साथ चल रही है।''[9]

समकालीन कविता समाज की उस स्थिति को भी रेखांकित करती है जिसमें व्यक्ति मानवीयता जैसे चरम मूल्य से खौफ खाने लगा है, क्योंकि इंसानियत के नाम पर वह इतनी बार धोखा खा चुका है कि अब उसे इस पर विश्वास ही नहीं रहा। सामाजिक विषमताओं ने उसके दृष्टिकोण को इतना दूषित कर दिया है कि कभी कोई मानवीयता दिखाकर भलाई करने के लिये आगे भी बढ़ता है तो उस पर संदेह होने लगता है। अरूण कमल इसी स्थिति का उल्लेख करते हुये कहते है कि – ''ऐसा जमाना आ गया है उल्टा/कि कोई तुम्हे रास्ता बतावे तो/शक करो/वह तुम्हे लूट सकता है सुनसान पाकर/कोई तुम्हे रात में सोने की जगह दे तो सोचो/तुम्हारा खून कर सकता है चुपचाप/और लाश आंगन में गाड़ देगा।''[10]

''जीवन कर्मयोग है, एक साधना है, मूल्यों की खोज और प्राप्ति है और इसलिये वरेण्य है''[11] लेकिन समाज में होने वाले परिवर्तनों ने इस धारणा को भी परिवर्तित कर दिया। विज्ञान के अविर्भाव ने मानव को भौतिकता के समंदर में डुबो कर अत्यधिक स्वार्थी बना दिया फलतः घोर अवमूल्यन की स्थिति उत्पन्न हुई। वर्तमान सामाजिक परिवेश में मानव पर स्वार्थ विपत्ति इतनी हावी हो गई कि वह समस्त नैतिक दायित्वों को भूलकर केवल स्वार्थ सिद्धि में लिप्त हो गया। समकालीन कवि ने बड़े सचेत ढंग से इस संक्रमण को पकड़ा और कहीं उसे व्यंग्य विनोद की शब्दावली में रेखांकित किया तो कहीं आक्रोश और विद्रोह के स्वर में

उसका पर्दाफाश किया और कभी निराशा और हताशा भरे स्वर में भी उसे अभिव्यक्ति दी हैं। उन्होने देखा कि सामाजिक जीवन में परोपकार जैसे मूल्य का ह्रास होते जा रहा है। बाढ़ आती है हजारों लोग डूब जाते हैं एक एक बूंद पानी के लिये लोग तरस कर मर जाते हैं लेकिन सुविधाभोगी स्वार्थी लोग अपनी मौज मस्ती, अपने कार्य व्यापार में लीन रहते हैं लोग डूबे मरें तबाह हो जायें उन्हे कोई सरोकार नहीं। वे अपने सुखों में लीन स्वहित पूर्ति के साधन जुटाने में मस्त है ऐसे लोगों के मन से आज परोपकार की भावना लगभग समाप्त हो गई है समकालीन कविता लुप्त होते इस मूल्य को अभिव्यक्त करती है – ''गांव के गांव बाढ़ की चपेट में थे/और गांव के गांव बूंद – बूंद पानी के लिये तरस भी रहे थे/और मेरे यार संस्कृति और लोक कलाओं के/आयात–निर्यात में इतने मुब्तिला थे/कि उन्होने आकोश की तरफ एक बार भी नहीं देखा।''[12]

मानव को परिवर्तन के चक्र ने ऐसे बदल कर रख दिया कि सारे उदात्त मूल्य व्यक्ति के जीवन से गायब हो गये। व्यक्ति क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति हेतु इतना गिर गया कि दूसरों का अहित करने में ही उसने अपने जीवन की सार्थकता समझ ली। डूबते को बचाकर जीवन सार्थक करने वाला मानव आज स्वयं लोगों को डुबोकर अपना हित करने लगा और यही नहीं इस कुत्सित कार्य को अंजाम देकर लोगों की दृष्टि में सहानुभूति का पात्र बनने हेतु विलाप का नाटक भी मानव बड़ी कुशलता से करने लगा है। चंद्रकांत देवताले समकालीन समाज के ऐसे व्यक्तियों के चरित्रिक यर्थाथ को अभिव्यक्त करते हैं –

''वे झण्डियों और पत्तों से सजी नाव को/बेपैंदा कर देते हैं लंगर छूटने ही के पहले/और डूब जाने पर विलाप करते हैं।''[13]

आदर्शों और सिद्धांतों की बलि चढ़ाकर सुविधाओं और उच्च जीवनयापन की लालसा ने व्यक्ति को चारित्रिक पतन की ओर धकेल दिया है। समकालीन कविता व्यक्ति के गिरते चाारित्रिक स्तर को उजागर कर मूल्यों की स्थापना का प्रयास करती है। समाज में बढ़ती भोगवादिता के परिणामस्वरूप पुरूष ही नहीं, आज स्त्री भी सफलता एवं उच्च जीवनयापन की लालसा में अपनी अस्मिता तक को दाव पर लगाने में नहीं हिचकती वह स्वेच्छा से संबंध स्थापित करने के साथ ही अपने शरीर का प्रयोग विज्ञापन के रूप में बीड़ी के बण्डल पर भी करवाने में नहीं सकुचाती धूमिल स्त्री चरित्र का ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत करते हुये लिखते हैं –

''मुझे पता है /स्त्री /देह के अंधेरों में /बिस्तर की अराजकता है/स्त्री पूजी है/बीड़ी से/लेकर/बिस्तर तक/विज्ञापन में फैली हुई।''[14]

समकालीन कविता व्यक्ति की अच्छाई में विश्वास करती है और उसकी स्थापना का प्रयास करती है। उसका विश्वास है कि औद्योगीकरण, वैज्ञानिकीकरण और पश्चिमीकरण के कारण समाज में बड़ी तेजी से परिवर्तन हुये हैं, परिणामस्वरूप भोगवादी दृष्टिकोण भी पनपा है और मानव मूल्य में भी परिवर्तन आए हैं, किन्तु फिर भी उनका महत्व आज भी समाज में बना हुआ है। परिवर्तन की

आधी समाज में स्थापित मूल्यों को पूरी तरह मिटा नहीं पाई है, तभी तो आज भी हमारे समाज में ऐसे आस्थावान व्यक्ति जीवित हैं, जो पूरी तरह सच्चाई और ईमानदारी के प्रति समर्पित है –

''मुझे लगता है/पेड़ के पीछे एक आदमी है/जो तोते के अधखाये फल के गिरने पर/उसे बीनकर ले जाता है/ जो मानता है कि/किसी छोटे से सच को भी/खराब नहीं जाना चाहिये।''[15]

समकालीन कविता समाज की परिवर्तित स्थितियों में परिवर्तित होते मूल्यों को अभिव्यक्त करती है। समकालीन कवि मूल्यों की आवश्यकता पर बल देता है क्योंकि वह मानता है कि सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिये मूल्य अति महत्त्वपूर्ण हैं और वह निरंतर मूल्यों की स्थापना के प्रयास करता है एवं मूल्यहीनता के प्रति उसके मन में आक्रोश है, कायरता, धोखाधड़ी, बेईमानी, स्वार्थलिप्सा, राजनीतिक पतन, निर्लज्जता एवं अन्याय सहना आदि पर समकालीन कवि की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति दृष्टव्य है –

''धीरज धरो, सहो सब डटकर/गर्दन तक कीचड़ में धंसकर/प्रजा, तंत्र का कमल उगाओ/जय जय भारत माता गाओ/खोजो प्रजातंत्र की महिमा/ओढ़ो खरे खोट की महिमा/गाओ चौक नोट की महिमा।''[16] क्योंकि इन कवियों की आस्था कर्मठता, ईमानदारी, श्रम की भावना, एकात्मवाद, आस्तिकता, मानवमात्र के प्रति प्रेम समानता, भाईचारा एवं जिजीविषा आदि मानव मूल्यों में रही है।

प्रस्तुत शोधपत्र में विस्तार से विवेचन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि समकालीन कविता मोहभंग से उपजी मूल्यहीनता की कविता है, इसमें नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का विघटन व्यापक स्तर पर हुआ है, समकालीन कविता में मूल्यहीनता के प्रति आक्रोश एवं विरोध का भाव है। समकालीन कवियों ने समाज में होने वाले परिवर्तनों के प्रभावास्वरूप मूल्यों में होने वाले समस्त परिवर्तनों को अभिव्यक्त किया है। मूल्यों के विघटन एवं ह्रास को दिखलाकर कवि फिर से इन मूल्यों की पुर्नस्थापना के प्रयास करता है।

संदर्भ :

1. एम. एल. गुप्ता एवं डी. डी. शर्मा : समाज शास्त्र केसद्धांत, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 12वां संस्करण, 2007, पृ.9.
2 डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय : समकालीन कविता की भूमिका, मैकमिलन प्रकाशन, 1976, पृ. 3.
3 रघुवीर सहाय, एक समय था, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995, पृ. 29.
4 वही, पृ. 21.
5 धूमिल : संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1972, पृ. 108.
6 वही।
7 अशोक बाजपेयी : शहर अब भी संभावना है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 1966, पृ. 63.

8 धूमिल : संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन दिल्ली,1972, पृ. 30.
9 लीलाधर जगूड़ी : ईश्वर की अध्यक्षता में, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1999,पृ. 78.
10 अरूण कमल : सबूत, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 1999, पृ. 67.
11 डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय : समकालीन सिद्धांत और साहित्य, मैकमिलन कं. ऑफ इंडिया, 1976, पृ. 86.
12 चंद्रकांत देवताले : आग हर चीज में बतायी गयी है, राजकमल प्रकाशन 1987, पृ. 133.
13 चंद्रकांत देवताले : आग हर चीज में बतायी गयी है, राजकमल प्रकाशन 1987, पृ. 118.
14 धूमिल : सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृ.91.
15 अशोक बाजपेयी : एक पतंग अनंत में, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृ. 69.
16 सोमदत्त : पुरखों के कोठार से, संभावना प्रकाशन, हापुण, प्रथम संस्करण 1986, पृ. 62.